आध्यात्म प्रेमी महात्मा कानजी स्वामी.

आप पहले स्थानकवासी साधु थे पर अब दिगम्बर जैन धर्म की विशेषता और महत्ता देख कर स्थानकवासी वेश को त्याग कर सच्चे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी बन गए हैं। यही नहीं आपने अपनी विद्वत्ता और त्याग के बल पर २ हजार अन्य स्थानकवासियों को भी दिगम्बर धर्मानुयायी बनाया है।

प्रस्तावना

जहाँ धर्म का मार्ग बिगड़ता हो, जहाँ क्रिया अर्थात् आचरण का विनाश होता हो, जहाँ शास्त्र के अर्थ का अनर्थ हुआ हो वहाँ धर्म और क्रिया तथा शास्त्र के अर्थ का यथार्थरूप प्रगट करने के लिये बिना पूछे भी बोलना चाहिये, ऐसा नीति का वाक्य है।

धर्म नाशे क्रियाध्वंसे, सुसिद्धान्तार्थ विप्लवे।
अपृष्टेनापि वक्तव्य, तत्स्वरूप प्रकाशने ॥

जगत वन्दनीय श्री १००८ भगवान् महावीर स्वामी को जीवमात्र शान्ति सुख का दाता वाङ्मय अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य श्री भद्रबाहु के समय तक एक धारा के रूप में प्रवाहित होता रहा तब तक जैन संघ में न कोई विकार आया और न उसमें संघ भेद ही हो पाया, परन्तु उसी समय भारत के उत्तर प्रान्त में बारह वर्ष का लगातार घोर अकाल पड़ा, उस दुष्काल के कारण उत्तर प्रान्तीय जैन साधुओं में परिस्थिति वश शिथिलाचार घर कर गया, वे लज्जा परीषह-विजयी न रह सके, अतएव नग्नवेश को छोड़ कर कोपीन (लँगोटी) पहनने लगे तथा श्रावकों के घर से भोजन मांग कर लाने के लिये लकड़ी के पात्र भी अपने पास रखने लगे, अतएव जैन साधु का स्वतन्त्र स्वाधीन सिंहवृत्तिरूप आदर्श नग्नवेश उनमें लुप्त होगया। वे अपने कृत्रिम वेश के इतने आदी बन गये कि अकाल चले जाने पर भी उनका वह विकृतरूप और शिथिल-आचार उनसे न जा सका, वह शिथिलाचार को न छोड़कर वस्त्र, दण्ड, पात्र आदि धारक साधु "श्वेताम्बर" कहलाये जो अभी तक मूर्ति पूजक हैं।

पश्चात इन्हीं श्वेताम्बरों में से सम्वत् १५३४ में स्थानकवासी (ढूंढक) पन्थ निकला जिस को किसी लींबडी निवासी लुंका नाम के लिखारी ने चलाया। इस सम्प्रदाय के हाथ में लाठी न

रख कर मुख पर पट्टी बांधते हैं और मूर्ति पूजन को नहीं मानते। परन्तु इनके इस प्रकार न मानने से यह तो सिद्ध नहीं होता कि स्थानकवासी मत के सूत्र ग्रन्थों में मूर्ति पूजन है ही नहीं। यदि इनके सूत्र शास्त्र देखे जाते हैं तो उनमें मूर्ति पूजन के विधान बड़े विस्तार के साथ पाये जाते हैं। जिनमें से कुछ प्रमाण इस पुस्तक में प्रगट किये जा रहे हैं। अतः स्थानकवासी गृहस्थ सज्जनों के लिये यह ध्यान में लाने की चीज है।

मैंने जिस उत्साह से इस पुस्तक को लिखना प्रारम्भ किया है, अपनी समझ के अनुसार उसी उत्साह से मैं इसे पूरी नहीं कर सका। इसका मुख्य कारण यह है कि जिसे लिखते हुए बहुत खेद होता है कि पं० राजेन्द्रकुमार जी दि० जैन संघ मथुरा के मन्त्री जिनके पास सघके सरस्वती भवन में स्थानकवासियों के ३२ सूत्र ग्रन्थ थे उनके लिये मन्त्री जी की हर तरह से खुशामद की परन्तु ग्रन्थ भेजना तो दूर रहा उत्तर तक के भी दर्शन उपलब्ध नहीं हुए अथवा बहानेबाजी में ही समय बिताते रहे। हा ? दौर्भाग्य ?? तेरे रहते हुए शुभ कहाँ। मैं नहीं कह सकता, जैन–जाति का इस अविश्वासरूप अगाध पङ्क से कब निर्गम होगा। अतः यह पुस्तक पं० न्यामतसिंह जी अग्रवाल जैन टीकरी (मेरठ) जिन्होंने कि स्थानकवासियों के सूत्रों द्वारा* खण्डन-मण्डनार्थ कई पुस्तकें लिखी हैं, उन्हीं पुस्तकों के आधार पर लिखी गई है। इसलिये इसमें त्रुटि रहना एक साधारण बात है और मेरे प्रमाद या अल्प बुद्धि के कारण भी गलतियें रहना सम्भव है इसलिये पाठक महानुभावों से सविनय निवेदन है कि वे मेरे ऊपर क्षमा करें।

दिगम्बर जैन ब्र० सुन्दरलाल

---

* स्थानकवासियों के ३२सौं सूत्र ग्रन्थ जो पं० न्यामतसिंह जी के पास थे वह सबके सब चालाकी करके पं० राजेन्द्रकुमार जी ने मँगा लिये, फिर बहुत माँगने पर भी उनको वापिस नहीं दिये।

ढूँढक मत से मूर्ति मण्डन

मङ्गलाचरण

मुनिजन अहो ! सप्रेम जिनका ध्यान करते सर्वदा।
सज्जन समूह चकोर धुनि मुनि मुदित होते हैं सदा ॥
हां, तरण तारण विश्व में जिनका अनोपम नाम है।
उन परम पावन वीर प्रभु को बार बार प्रणाम है॥

प्रथम अपने इष्टदेवको नमस्कार कर श्वे० स्थानकवासी मतमें मूर्ति पूजन सिद्ध करने के लिये लेखनी उठाता हूँ। पाठक सज्जनों ! विश्व सदैव मूर्ति पूजक रहा है और सदैव रहेगा। इस दावे को आज तक किसी ने भी खारिज नहीं किया और न भविष्य में ही इसे कोई खारिज कर सकता है। तलाश करने पर भी संसार में आज एक भी मानव ऐसा नहीं मिलेगा जो कि मूर्ति पूजक न हो। मूर्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक सजीव और दूसरी निर्जीव। जीव मूर्तियाँ माता, पिता, गुरुजन तथा अन्य महापुरुष हैं। निर्जीव मूर्तियाँ महान पुरुषों की धातु पाषाण की मूर्तियाँ, उनके चित्र, नकशे, झण्डे, फोटो और महापुरुषों के कहे हुए वचनों के संग्रह स्वरूप ग्रन्थ तथा महापुरुषों के बताये हुए कुछ मुख्य चिह्न आदि हैं।

मूर्तिपूजा व्यर्थ है, इससे कोई लाभ नहीं है। जो ऐसा कहते हैं वह भारी भूल करते हैं। मूर्तिपूजा आवश्यक है और अत्यावश्यक है। इसके बिना मानव स्वप्न में भी अपने ध्येय को प्राप्त नहीं कर

सकता है। मूर्तिपूजा के यदि लाभ बतलाये जावें तो एक बड़े लम्बे समय की जरूरत है।

आप अपने माता, पिता, गुरु तथा अन्य पुरुषोंका इतना मान सम्मान, भक्ति, सेवा और विनय क्यों करते हैं? इसीलिये न कि वह आपसे बड़े हैं, गुण सम्पन्न हैं, आपके शुभ चिन्तक हैं, उन का मान सम्मान तथा विनयादि करनेसे आपमें उनके गुण आजायँ।

अगर यही बात है तो फिर मूर्ति पूजा व्यर्थ नहीं है, सार्थक है। हमारे माता पिता अन्य पुरुषों के अलावा और भी समय समय पर ऐसे-ऐसे महान पुरुष पैदा होगये हैं जोकि सर्व गुण सम्पन्न थे। जिन्होंने अनेकों महान कष्ट उठा कर हमको कल्याण का मार्ग बतलाया है। फिर क्या उनके प्रति हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम उनका भी मान, सम्मान, सेवा, भक्ति और विनय आदि करें। जो कि हमारे माता पिता तथा इतर जनों से सर्व प्रकार बढ़कर थे।

आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द के चित्रकी तथा वेदकी, ईसाई गिरिजाघर में लगे हुए क्रास की तथा बाइबिल की, सिक्ख गुरु नानक के चित्र तथा ग्रन्थसाहब की, स्काउट्स तथा फौजी आदमी अपने २ झण्डे की और मुसलमान मसजिद की दीवारों पर लिखी हुई आयतें तथा कुरानशरीफ की इतनी इज्जत और विनय आदि क्यों करते हैं? इसलिये न कि वह उनके महापुरुषों के चित्र तथा उनके उपदेशों के संग्रह स्वरूप ग्रन्थ और उनके महापुरुषों की याद दिलाने वाले खास सचिह्न हैं। इनके देखते ही उनकी याद आजाती है कि हम भी उनके से ही गुण प्राप्त करें। इस प्रकार से समस्त विश्व मूर्त्ति पूजा करता है। परन्तु जैनधर्मी कहलाने वाले श्वे० स्थानक वासी (ढूँढिये) मतानुयायियों की यह दलील है कि महापुरुषों के पवित्र कार्योंकी सराहना तथा उनके गुणों का चिन्तवन बिना मूर्त्ति के भी होसकता है। ऐसी सूरत में मूर्त्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहती फिर मूर्त्ति पूजा क्यों की जाय।

इस बातका निराकरण इस तरह से हो जाता है कि कोई बालक जब किसी पाठशाला में पढ़ने को जाता है यदि मास्टर उसे अ. क. ख. ग आदि वर्णों का आकार न दिखला कर जबान से ही कहा करे तो वह बालक कुछ नहीं समझ सकता। पर जब मास्टर उन्हीं वर्णों की शक्ल (कल्पित मूर्त्ति) बना कर तख्ते पर लिख देता है तो बालक उसको देख कर स्वयं अपनी पट्टी पर उस रूपको बार-बार बनाता और मिटाता है और एक दिन आता है कि वह वैसा ही रूप स्वयं बनाने लग जाता है। बस इसी प्रकार साधक पुरुष वीतरागी मूर्त्ति के सन्मुख बैठ कर निरन्तर गुणों का विचार करता हुआ अपनी कमियों को मिटाता हुआ एक दिन ऐसा हो जाता है कि वह खुद ही सिद्ध पुरुष बन जाता है।

और देखिये ! जिस समय एक विलायती मनुष्य अपने हाथ में हिन्दुस्तान का नक्शा लेकर चलता है तब बिना किसी से पूछे सुने उस नक्शे द्वारा सारे हिन्दुस्तान की सैर कर जाता है। यह सैर किसने कराई ? उस हिन्दुस्तान के नक्शे ने, उस मूर्त्ति ने। जब एक मित्रका चित्र सामने आता है, उसी समय हृदय में प्रेम उमड़ आता है। यदि उसी समय किसी दुश्मन का चित्र सामने आजाता है तो फौरन ही भाव बदल कर हृदय में क्रोध उत्पन्न हो जाता है। माता, बहिन की मूर्त्ति को देख कर स्वयं भाव निर्विकार रहते हैं। अपनी स्त्री या किसी प्रेमिका को देख कर भाव विकारी होजाते हैं इत्यादि यह सब मूर्त्ति का ही प्रभाव तो है। अतः मानना पड़ेगा कि बिना मूर्त्ति के गुणों का चिन्तवन कदापि नहीं हो सकता।

जैन "पाण्डवपुराण" में एक कथा है जो शायद स्थानकवासियोंके भी यहाँ किसी सूत्रमें लिखी होगी परन्तु अभी तक हमारे देखने में नहीं आई है। वह कथा इस प्रकार है कि एक

लव्य नामक भील के बालक को धनुर्विद्या सीखने की इच्छा हुई। मालूम हुआ कि इस विद्या में गुरु द्रोणाचार्य बड़े पारङ्गत हैं इस लिये वह गुरु द्रोण के पास पहुँचा। उसने उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। गुरु द्रोणाचार्य ने साफ इन्कार कर दिया कि मै तुझ जैसे शूद्रको धनुर्विद्या नहीं सिखा सकता। बिचारा भीलका बालक वापिस जङ्गल में चला आया और उसने जङ्गलमें गुरु द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की मूर्त्ति बनाई और नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा सेवा करता तथा उनसे विनय पूर्वक प्रार्थना करता है गुरु महाराज मुझे कृपया इतनी योग्यता दीजिये कि मै धनुर्धारी हो जाऊँ। निदान ऐसा ही हुआ कि थोड़े ही समय बाद वह ऐसा धनुर्धारी हुआ कि जिसके कार्यों को देख कर वीर अर्जुन तक को उसकी सराहना करनी पड़ी। यह सब किसका प्रभाव था जो कि एक भीलका जैसा महामूर्ख बालक भी धनुर्धारी बन गया, अगर वह गुरु द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बना कर उसकी पूजा सेवा न करता तो क्या वह गुरु द्रोणाचार्य का आदर्श शिष्य और योग्य धनुर्धारी बन सकता था। कदापि नहीं। यह सब मूर्त्तिकी ही करामात थी। बिना मूर्त्ति के किसी का अनुकरण करना तथा उसके गुणों का प्राप्त करना बहुत टेढ़ी खीर है।

स्थानकवासी साधु अपने गुरु साधुओं का फोटो अपने पास रखते हैं, उन गुरुओं की समाधि बनवाते और उस समाधि के अन्दर उन गुरुओं के चरण स्थापन कराते हैं तो क्या स्थानकवासी साधु या श्रावक लोग उनकी विनय भक्ति नमस्कारादि नहीं करते। यदि नहीं करते तो यह फोटो या समाधि किस लिये? यदि उनकी भक्ति विनयादि करते हैं तो फिर मूर्त्ति पूजा अनावश्यक क्यों? क्यों जी यदि कोई उन फोटो या समाधि के चरणों पर आक्रमण करे तो क्या आप चुपचाप देखते रहेंगे यदि ऐसा हो तब तो मूर्त्ति अनावश्यक ही है यदि आप उस आक्रमणी को किसी प्रकार से

भी हटाते हैं तो मूर्त्ति आवश्यक हो चुकी।

दूसरी दलील स्थानकवासियों की यह भी है कि मन्दिर बनवाने में मूर्त्ति की पूजा प्रतिष्ठा करने कराने में आरम्भ होता है और जहाँ आरम्भ है वहाँ पाप होता है।

यह दलील भी बेबुनियाद की कच्ची है। इस कुतर्कका प्रथम तो जवाब यह है कि आप लोग अपने रहने का मकान बनवाते हो, लड़की लड़कों का विवाह और मरे हुओं की काज क्रिया करते हो जोकि बिल्कुल ही पाप कार्य हैं, इसमें तो आरम्भ जनित पाप नहीं माना और मन्दिर या मूर्त्ति जिसके बनवाने में पाप कम और पुण्य अधिक उसे पाप क्रिया समझने लगे। भला जहाँ ऐसी हट है वहाँ सद्बुद्धि को स्थान कहाँ मिल सकता है। खैर! इस विवाद का अन्त अब आपके (स्थानकवासी) सूत्रों द्वारा किये देता हूँ।

"उववाई सूत्र" में जहाँ अवण्डश्रावक की कथा लिखी है वहाँ उसमें बतलाया है कि "अवण्डश्रावक" मूर्त्तिपूजन करता था "पन्नपती सूत्र" के पृष्ठ १५७-१५८ वें पर कहा है कि गृहस्थ श्री जिनेन्द्रदेव की मूर्तिकी पूजा करे। "उपासक दशांग सूत्र" के प्रथम अध्याय में 'आनन्द श्रावक' को मूर्तिपूजन करने वाला बतलाया है। "ज्ञाताधर्म कथासूत्र"में खुलासा लिखा हैकि द्रौपदी और रेवती पूजन करती थी। "जीवाधिगम सूत्र" के ३८० से ४१२ तक जरा पढ़ कर तो देखिये वहाँ भगवान महावीर स्वामी मूर्तिपूजन की और मूर्त्तिपूजन करने वालों की कैसी महिमा बतला रहे हैं। क्या ये पूर्व समय के स्थानकवासी लोग आज के स्थानकवासियों के समान भी ज्ञानी, श्रद्धानी न थे। सोचने की बात है; जबकि महापुरुषों के पवित्र कार्यों की सराहना तथा उनके गुणों का चिन्तवन बिना मूर्ति के भी हो सकता है तो उपरोक्त पूर्व पुरुषों ने मूर्ति पूजन क्यों किया? और जहाँ मूर्ति हैं वहाँ उन पुरुषों को मन्दिर या चैत्यालय तो अवश्य ही बनवाने पड़े होंगे?

और भी देखिये मूर्तिपूजन का विधान। "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" पृष्ठ ८३ सूत्र २६वें "जम्बूदीवेणं भन्ते ।० इत्यादि सूत्र में गणधर जी शङ्का करते हैं कि "अहो भगवन्! जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत पर कितने कूट हैं" उत्तर में महावीर भगवान कहते हैं "अहो गोत्तम! नव कूट हैं, जिनके नाम १ सिद्ध यतन कूट २ दक्षिणार्ध भरत कूट ३ खण्ड प्रपात्त गुफा कूट ४ मणिभद्रकूट ५ वैताढ्य कूट ६ पूर्णभद्र कूट ७ तिमिश्र गुफा कूट ८ उत्तराद्ध-भरत कूट ६ वैश्रवण कूट ॥ सूत्र २७ "कहिणं भंते? इत्यादि इस सूत्र में गणधर जी भगवान महावीर स्वामी से पूछते हैं "अहो भगवन्! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के वैताढ़ पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ कहाँ हैं" इसका खुलासा जो भगवान् महावीर स्वामी ने जैसा किया है वह यहाँ ज्योंका त्यों संग्रह किया जाता है। भगवान महावीर स्वामी कहते हैं। अहो गोत्तम! "पूर्वके लवण समुद्र से पश्चिम में और दक्षिण और दक्षिणार्द्ध भरतकूट से पूर्वमें सिद्धायतन कूट कहा है, वह ६। योजन का ऊँचा है, मूलमें ६। योजन का चौड़ा है, बीच में कुछ कम ५ योजन का चौड़ा है और ऊपर साधिक तीन योजन का चौड़ा है, मूलमें कुछ कम वीस योजन की परिधी है, बीचमें कुछ कम पन्द्रह योजन की परिधी है और ऊपर साधिक नवयोजन की परिधि है। मूल में विस्तीर्ण, बीचमें संकुचित, और पतली है, गो पुच्छ आकार वाला सब रत्नमय स्वच्छ श्लक्षण यावत प्रति रूप है, इसको एक पद्मवर वेदिका और एक वनखण्ड चारों तरफ रहा हुआ है, इनका प्रमाण और पूर्ववत जानना, सिद्धायतन पर बहुत रमणीय भूमि भाग कहा है, जैसे आलिंग पुस्कर यावत बाणव्यन्तर देवता यावत विचरते हैं, उसे बहुत समय रमणीय भूमि भाग पर मध्य बीचमें एक सिद्धायतन कहा है, वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और कुछ कम एक कोसका लम्बा आधा कोस चौड़ा और कुछ कम

एक कोस का ऊँचा कहा है, अनेक सैंकड़ों स्तम्भ वेष्ठित है, प्रशस्त वेडूर्य रत्नमय विमल खम्भ हैं विविध प्रकार के मणिरत्नों से बना हुआ उज्वल भूमि विभागों में विभक्त किया हुआ है, ईहामृग, वृषभ, तरङ्ग, नर, मगर, विहङ्ग, व्याल, किन्नर, किंपुरुष, रूर, सरप, चामर, कुञ्जर, वनलता और पद्मलता इत्यादि अनेक चित्रों से चित्रित हैं, कञ्चन मणिरत्न की स्थूमिका है। विविध प्रकार के पाँच वर्ण के घण्टा पताका वगैरह से परम मण्डित जिसका अग्र सिखातल है। तेजप्रभा सहित लिप्त गुप्त है, यावत ध्वजायुक्त है, इस सिद्धायतन के तीन दिशा में तीन द्वार कहे हैं, वे द्वार पाँच सौ धनुष के ऊँचे अढ़ाई सौ धनुष के चौड़े और उतने ही प्रवेश वाले, श्वेत, श्रेष्ठ सुवर्ण की भूमिका वाले वगैरह द्वार का वर्णन जानना यावत बनमाला पर्यन्त कहना, उस सिद्धायतन के अन्दर बहुत रमणीय भूमि भाग कहा हुआ है अथवा आलिङ्ग पुष्कर यावत उस सिद्धायतन के बहुत मध्य बीचमे एक बड़ा देवच्छन्द कहा है, यह पाँचसौ धनुष का लम्बा चौड़ा और साधिक पाँचसौ धनुष ऊँचा, सब रत्नमय है, वहाँ जिन प्रमाण ऊँचा १०८ जिन प्रतिमा हैं, ऐसे ही यावत धूपके कड़च्छ हैं॥

"राजप्रश्नीय सूत्र" पृष्ठ १२८ वें पर बतलाया है कि "उन मणि पीठिका के ऊपर चार जिनप्रतिमा, जिनके ऊपर जिनके जितनी ऊँची प्रमाणो पेत प्रयङ्कासन युक्त स्थूमिका के सन्मुख बैठी हैं उनके नाम ऋषभ, वर्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण हैं" पृष्ठ १३४वें पर लिखा है कि "माणवक चैत्यस्तम्भ पर पाठिये पर नागदन्ता उनमें रूपामई छींके, उनमें गोल डब्बे, उनमें बहुत जिनकी दाढें अस्थाई हैं वे पूजनीय अर्चनीय हैं।" पृष्ठ १४० वें पर चमर छत्र वाली प्रतिमाओं का जो वर्णन किया है उसे भी जरा देखलें। यहाँ विस्तार के भयसे नहीं लिखा है। पृष्ठ १३८ वें में १०८ प्रतिमाओ का वर्णन करते हुए, जिनके जितनी ऊँची प्रयङ्क आसन से बैठो

हुई बतलाई हैं। पृष्ठ १४६-१४७ वें में लिखा है कि "सूर्यप्रभ विमान के सिद्धायतन में १०८ जिन प्रतिमा हैं। पृष्ठ १६६से १८१ तक एक कथा लिखी है उसका कुछ अंश यों हैं कि "सूर्यप्रभदेव देवों सहित बाजे बजाता सिद्धायतन में आया, जिन प्रतिमाओं में आया, जिन प्रतिमाओं को नमस्कार किया, प्रणाम कर मोर-पीछी से प्रमांजी फिर स्नान कराया, चन्दन से गात्र सुगन्धित किया, फिर जिन प्रतिमाओं को महाअर्घ चढ़ाया, वस्त्र पहनाये, फूल चढ़ाये, पूजा करी।"

उपासक दशांग सूत्र" के प्रथम अध्याय में "नो खलु मे भन्ते कप्पइ अज्ज" इत्यादि गाथा द्वारा कहा गया है कि गृहस्थों को जिन भगवान की पूजा ही कल्याणकारी है। सफा याद नहीं रहा किन्तु "भगवती सूत्र' में साफ लिखा है कि मुनियों ने अकृत्रिम चैत्या-लयों के दर्शन किये, विद्याचारण, जङ्घाचारण, नन्दनबन और नन्दी सुरदीप रुचिकर दीप इत्यादि में अकृत्रिम मन्दिरों के दर्शन किये और वहाँ से आकर जहाँ से गये थे वहाँ कृत्रिम मन्दिरों के दर्शन करे यह बात भगवती सूत्रमें प्रस्तुत है, देवकी और द्रोपदी रानीने मन्दिरों में जाकर दर्शन किये। इतने पर भी स्थानकवासी मूर्तिपूजन नहीं मानते यह कौनसी बात है।

"जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" पञ्चम उपांग के "चक्रवर्त्याधिकार" पृष्ठ १३६-१३७ पर जहाँ चक्रवर्ती की विभूति का वर्णन किया है वहाँ खुलासा लिखा है कि जिस समय भरत चक्रवर्ती ने यह सुना कि आयुधशाला में चक्र उत्पन्न हुआ तब बाजे गाजे के साथ वे आयुधशाला में गये और वहाँ "चक्ररत्न" को देखते ही प्रणाम किया, फिर चक्र रत्न के पास जाकर उसे मोरपीछी की पूंजनी से स्वच्छ किया, उसको प्रमार्जा दीव्य पानी की धारसे सिंचन किया, श्रेष्ठ गोशीर्षचन्दन का लेपन किया और अग्र श्रेष्ठ गंध माला से अर्चना करके पुष्प का आरोपना किया, माला गन्धवर्ण चूर्ण वस्त्र

और आभरण का आरोपन किया। अच्छे निर्मल सुलक्षण सुकोमल श्वेत उज्वल रजत मय तंदुलों से चक्ररत्न के पास आठ आठ मङ्गल का आलेखन किया। तद्यथा १ स्वस्तिक २ श्रीवत्स ३ नंदावर्त ४ वर्धमान ५ भद्रासन ६ मत्स्य ७ कलश और ८ दर्पण, यों आठ मङ्गल द्रव्यका आलेखन करके इसप्रकार उपचार किये। पाढलवृक्ष पुष्प, बाइाल सहिना, तिलक वृक्ष के पुष्प, कणेर के पुष्प, कुन्दवृक्ष के पुष्प, कुब्ज के पुष्प, कोरंट पत्र और दमण के ऐसे सुगंधित पुष्पोंको हथोंमें ग्रहण किये हुए और करतलसे भ्रष्ट हुएको छोड़ते हुए पाँच वर्ण वाले पुष्पों के समूह का मर्यादा युक्त विस्तार किया चन्द्रकान्तरत्न हीरा वैडूर्यरत्न का विमल दण्डवाला, सुवर्णमणि रत्न से अच्छी तरह चित्रित, कृष्णागरु कुन्दरुक्क तुरुक्क ऐसे धूप की महागन्ध से व्याप्त, धूम्र की श्रेणी निकालने वाला ऐसा वैडूर्य रत्न मय धूप का कुड़छा लेकर धूप दिया वहाँ से सात आठ पग पीछा सरक करके बावां घुटना नीचे रख जमीन को लगा यावत प्रणाम किया।" इत्यादि—

नोट—स्थानकवासी साधु या गृहस्थों के मुख से यह कहना सुना जाता है कि अचेतन मूर्ति के पूजने से क्या लाभ। इस शंका का समाधान इस "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" के इस विधान में वेदलील हो जाता है। क्योंकि जिस प्रकार से भरतचक्रवर्ती ने चक्र का पूजन करके उस अचेतन चक्र द्वारा छः खण्ड के देव दानव और विद्याधर अथवा भरतक्षेत्र के तमाम बलवान राजाओं को जीतकर स्वतंत्रता प्राप्त की, उसी प्रकार "श्री अर्हन्तभगवान" की अचेतन मूर्ति भी अनादि से लगे हुए कर्मशत्रुओं का नाश करा कर मोक्षके (स्वतंत्र) अखण्ड सुख की प्राप्ति कराती है।

दूसरी दलील स्थानकवासियों की मोरपंख की पीछी पर है जिसे वे अशुद्ध बताते हैं। परन्तु यह उनकी दलील "सूर्यप्रभदेव" और "भरतचक्रवर्ती" के कथन से कट जाती है क्योंकि इन दोनों

ने मोरपंख की पीछी ही से प्रमार्जन किया है ऊनकी से नहीं किया अतः ऊनकी पीछी (ओघा) अशुद्ध है इसमें निरन्तर जीव पड़ते और मरते रहते हैं ।

अब एक प्रमाण "जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति" का और भी लीजिये । इस सूत्र के "क्षेत्रवर्ष धराणां अधिकार" का वर्णन करते समय जिस समय "हिमवन पर्वत" का वर्णन किया है उस समय गौत्तम जी ने भगवान महावीर स्वामी से पूछा है कि "अहो भगवन ! चुल्ल हिमवंत वर्षधर पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ हैं ?" इसके जवाब में जैसा भगवान महावीर ने वर्णन किया है उस पर स्थानकवासियों को ध्यान देना चाहिये। भगवान कहते हैं "अहो-गौत्तम ! पूर्व के लवण समुद्र से पश्चिम में चुल्लिहिमवत कूट से पूर्व में सिद्धायतन कूट कहा है, वह पाँचसौ योजन का ऊँचा, मूलमें पाँचसो योजन चौड़ा, बीचमें तीनसो पचहत्तर योजन चौड़ा और ऊपर अढ़ाईसौ योजन चौड़ा है, मूलमें अधिक एक हजार पाँचसो इकयासी योजन की परिधि है । बीचमें एक हजार एकसो छयासी योजन की परिधि है । ऊपर सातसौ इकयानवे योजन से कुछ कम की परिधि है, मूलमें विस्तीर्ण बीच में संकुचित व ऊपर पतला है गोपुच्छ संस्थान वाला है सब रत्नमय अच्छा है । उसको एक पद्मवर वेदिका व एक वनखण्ड चारों ओर घेरे हुआ है। सिद्धा-यतन कूट पर बहुत रमणीय भूमि विभाग कहा है। यावत उस बहुत रमणीय भूमि भाग के बीच में एक बड़ा सिद्धायतन कहा है वह पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा, छत्तीस योजन का ऊँचा यावत उसमें जिन प्रतिमा रही हैं। उन सबका वर्णन पूर्वोक्त प्रकार जानना । गाथा २४ पृ० २८६-२८७-२८८

नोट—सूत्र में जिस प्रकार हिमवत पर्वत का वर्णन किया गया है और उसमें जिस प्रकार सिद्धायतन और जिन प्रतिमा बतलाई हैं उसी प्रकार महाहिमवन्, निषध, नील, रुक्मि, शिखरन और

मेरु पर्वत पर सिद्धालय और जिन प्रतिमा बतलाई गई हैं जो यहाँ विस्तार के भय से नहीं लिखी गई। बस अब मैं यहाँ श्वेताम्बर स्थानकवासियों से पूछता हूँ कि आप अपने इन सूत्रों को मानते हैं या नहीं। यदि मानते हैं तब तो आपको मूर्तिपूजा मंजूर करनी पड़ेगी यदि नहीं मानते तो बतलाइये यह स्थानकमत आपने किस आगम प्रमाण पर ग्रहण किया।

अब मैं एक और ताजा उदाहरण प्रत्यक्ष मूर्तिपूजा पर आपके सामने रखता हूँ और वह इस प्रकार हैकि सोनगढ़ (काठियावाड़) निवासी "श्री कान्हजी स्वामी" जोकि एक बड़े विख्यात स्थानकवासी साधु थे और वह इक्कीस साल तक उसी वेश में रहे। उस अवस्था में उन्होंने स्थानकमत के सूत्र भी खूब देखे परन्तु जब उनको उन सूत्रोंमें कहीं भी आत्मा कल्याण का मार्ग न मिला और न कहीं मूर्तिपूजन का निषेध ही मिला तब उन्होंने दिगम्बर धर्म के "समयसार, आत्मानुसाशन, परमात्मा प्रकाश, पंचाध्यायी आदि ग्रन्थों को पढ़ा तो एक दम से उनके हृदय के कपाट खुल गये और यह पक्का विश्वास होगया कि आत्मा का कल्याण हो सकता है तो दिगम्बर धर्म से ही हो सकता है, श्वेताम्बरमत से नहीं, अतः उसी समय से उन्होंने वह स्थानकवासी साधु का वेश त्याग दिया और दिगम्बर धर्म के अनुयायी बन गये।

श्री कान्हजी स्वामी अध्यात्म के प्रकाण्ड पण्डित श्री कुन्दकुन्दाचार्य के परमभक्त, समयसारादि के रहस्यज्ञ प्रभावक पुरुष हैं आपकी अध्यात्मिक वाणी में जादू है। यही कारण है कि आपके उपदेश से प्रभावित होकर राजकोट, लींबड़ी, भावनगर, सूरत, सोनगढ़ आदि और भी कितने ही स्थानों के स्थानकवासी चार हजार के करीब नर नारी भगवान कुन्दकुन्द आचार्य एवं दिगम्बर परम्पराय के अनुयायी बन कर मूर्तिपूजा-दर्शन करने वाले हो गये हैं। सोनगढ़ में श्री कान्हजी स्वामी ने नया मन्दिर बनवाकर

अपने हाथ से खुद प्रतिष्ठा कर भगवान श्रीमंधर स्वामी (जो कि वर्तमान में बिदेह क्षेत्रमें मौजूद हैं) की मूर्ति व श्री नेमिनाथ श्री शान्तिनाथ, भगवान महावीर स्वामी की मूर्ति स्थापन करके पूजन करते कराते हैं। इसके सिवा स्वाध्यायशाला,अतिथि भोजनशाला, पाठशाला भी वहाँ दिगम्बर आम्नाय के अनुसार चालू हैं। राजकोट के स्थानकवासी जो दिगम्बर धर्मी बने हैं उन्होंने अपने यहाँ (राजकोट) में अभी मन्दिर बनवाया है वह नियम से श्री मन्दिर जी में दर्शन पूजन प्रक्षालन कर रहे हैं। इसी प्रकार दूसरे आत्माराम जी (श्रीमद् विजियानन्द सूरि) जो जन्म के ढूँढक-मती थे और दीक्षा लिये बाद कितने ही साल तक उसी स्थानक-वासी साधु के वेश में रहे और ढूँढक मतके सर्व शास्त्र देखे तो उनको मालूम होगया कि ढूँढकमत के सर्व शास्त्र कल्पित हैं कोई ४५ आगम मानते हैं, कितनेक ३२ कितनेक ३१ और कितनेक २१ ही मानते हैं। इस प्रकार कपोल कल्पित पंचायती अर्थ देख कर उन्होंने एक दमसे ढूँढक मत छोड़ दिया और संवेगी साधु मूर्ति पूजक बनगये और भी अनेकों ढूँढकमती साधु मूर्तिपूजक बने हैं, जिनका नाम यहाँ विस्तार के भय से न लिखकर सिर्फ ५-७ के ही नाम प्रत्यक्ष किये जाते हैं।

"आचार्य श्रीमद्कमल विजय सूरिः ढूँढक दिक्षा सं० १९३० और फिर इस ढूँढक मतको छोड़ कर सं० १९३२ में संवेगी साधु मूर्ति पूजक बने, मुनि श्री "बुद्धि बिजयजी' ढूँढक दीक्षा सं. १८८८ और फिर ढूँढक मत को छोड़ सं० १९०३ में संवेगी साधु मूर्ति पूजक होगये। "मुनि श्रीमन्महोपाध्याय"जी ढूँढक दीक्षा सं.१९१४ में लेकर फिर आत्माराम जी के शिष्य होकर संवेगी मूर्ति पूजक हुए। मुनि श्री "खांति विजय जी" ढूँढक दीक्षा सं० १९११ और फिर मूर्ति पूजक बने संवेगी साधु स० १९३० में। इस प्रकार ढूँढक मतको त्यागन करके साधु लोग मूर्तिपूजक बने और उन्होंने

हजारों की संख्या में ढूँढकमती गृहस्थों को मूर्ति पूजन का महत्व बतला कर मूर्तिपूजक बनाये। देखो आत्मारामजीका बनाया ग्रन्थ "तत्व निर्णय प्रासाद" दूसरा भाग।

नोट–इस ग्रन्थ में ढूँढिये साधुओं की मायाचारी का भी खूब पता लगता है कि जिन्होंने क्या-क्या छल कपट करके लोगों को बहका कर अपनी सम्प्रदाय बढ़ाया है।

बस अब अन्त में स्थानकवासियों से यही कहना है कि आप परीक्षा प्रधानी बनो और इस "बाबा वाक्यं प्रमाणं" को छोड़ कर किसी के बहकाने में आकर यह न समझ बैठो कि मूर्ति जड़ है। जड़की पूजा वन्दना करने से क्या लाभ होगा। पत्थर की मूर्तिकी पूजा करने से मनुष्य पत्थर के समान होजाते हैं। ऐसा कहना मिथ्यात्व बुद्धि है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ संसार में जितने भी प्राणी हैं जड़के संयोग से ही जीवित हैं। उसके वियोग होने पर तुरन्त मरण को प्राप्त होजाते हैं।

कल्पवृक्ष चिन्तामणि रत्न, चित्रावेलि ये जड़ पदार्थ होते हुए भी संसारी जीवों का उपकार करते हैं। दूध घृतादि भोजन की सामग्री जड़ ही तो है जिससे प्राणी का जीवन बन रहा है, बल बढ़ता है कहाँ तक कहा जाय? जड़ पदार्थों की शक्ति अचिन्त्य है। विज्ञान द्वारा होने वाले परमाणु बम्ब, गोला, जहरीली गैस, टैंक आदि ये सब जड़ पदार्थ हैं। इनकी शक्ति से आज संसार में कितना विध्वंस हो रहा है। दर्पण को देखने से सुन्दर बनाने का विचार होता है। इसलिये जड़ पदार्थ और मूर्तिक होते हुए इनके साथ संयोग सम्बन्ध हो जाने से मनुष्य की विचारधारा में अनेकानेक परिवर्तन होजाते हैं।

निरञ्जन निर्विकार भगवान की निर्विकार मूर्ति की स्थापना, दर्शन, पूजन करने से राग, द्वेष, मोह से दुखी संसारी जीवों को शान्ति और आराम मिलता है, उस परम कृपालु के कार्यों की याद

आती है, सदा हृदय में उस प्रभु के आकार (छवि) और गुणों को मूर्ति के सहारे से धारण किया जाता है और उसके ध्यान से खुद को तादृश (उसके समान) बनाने की इच्छा से ही मूर्ति की भक्ति और वंदना की जाती है, यही मूर्तिपूजन का समीचीन ध्येय है।

यह प्रमाणसिद्ध बात है कि सामने जैसा चित्र या फोटो व मूर्ति होती है, तदनुकूल ही मनकी वृत्ति होती है। इनके लिये तर्क वितर्क की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बाल गोपाल सब ही जानते हैं। इसलिये भगवान् तीर्थंकर की मूर्ति सामने रखने की आवश्यकता है जिसकी वजह से जन्म से लेकर निर्वाण पर्यन्त जो जो उन्होंने कर्तव्य किये हैं उनकी भिन्न अवस्था की भिन्न मूर्तिका ज्ञान, ध्यान, पूजन करके तदनुकूल ही आचरण करने से हम अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं। मूर्तिपूजा का उद्देश्य सिर्फ यही है कि उसके द्वारा उस मूर्तिमन्त देवके अनुपम और श्रेष्ठ गुणों को अपने जीवन में उतार कर संसार के समक्ष अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें। सौधर्मेन्द्र और शची नाम की इन्द्राणी भगवान की गाढ़ भक्ति, पूजा आदि करके एकाभवावतारी होगये हैं। अतः मूर्ति की पूजा भक्ति मोक्षका साधन है।

॥ समाप्तम् ॥